14 भंगों के द्वारा आत्म-तत्त्व का प्रकाशन

संपूर्ण जिनागम स्याद्वाद शैली में लिखा गया है क्योंकि वस्तु अनेकान्तात्मक है । स्याद्वाद की कोई आवश्यकता ही नहीं होती यदि पदार्थ एकान्तात्मक होते । यही कारण है कि अन्य दर्शनों में स्याद्वाद की कोई चर्चा नहीं है क्योंकि वे सभी एकांत दृष्टिकोण से पदार्थ का अस्तित्व स्वीकारते हैं । एकमात्र जैन दर्शन ही ऐसा है जो वस्तु को स्वरूपतः अनेकांतस्वरूपी मानता है और उसी को प्रकट करने के लिए स्याद्वाद की आवश्यकता पड़ती है ।

आचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार में आत्म-तत्त्व का शुद्ध नय, द्रव्यार्थिक नय, पारिणामिक भाव की प्रधानता से वर्णन किया है जिसका प्रयोजन शुद्धात्मा की उपलब्धि, अनुभूति, आनंद की प्राप्ति है । परन्तु आत्म-वस्तु इतनी मात्र ही नहीं है । वह तो वास्तव में अनेकांतस्वरूपी है और उसे जाने बिना शुद्धात्मा की प्राप्ति भी संभव नही है । इस बात को अनुभवते हुए आचार्य अमृतचन्द्र देव समयसार के अंत में परिशिष्ट लिखकर अनेकांत और स्याद्वाद के द्वारा आत्म-तत्त्व को प्रकाशित करते हैं ।

प्रथम वे चार मौलिक युगल-धर्मों से आत्मा का परिचय कराते हैं । ये चार धर्म-युगल हैं — तत्-अतत्, एक-अनेक, सत्-असत् और नित्य-अनित्य । आचार्य अमृतचंद्र देव ने इन धर्मों की चर्चा यहीं पर तीन बार की है । **प्रथम बार** तो **सामान्य अनेकांतस्वरूप** की चर्चा की है जैसाकि नीचे प्रथम विवरण में कहा जाने वाला है । चूँकि ये चारों ही धर्म-युगल केवल आत्म-तत्त्व में ही नहीं पाए जाते बल्कि प्रत्येक वस्तु में पाए जाते हैं । इसलिए इसे मैंने **सामान्य अनेकांतस्वरूप** कहा है ।

इसके पश्चात् इन्हीं चार युगलों का ज्ञानस्वरूप के आधार पर **विशेष स्वरूप** स्पष्ट किया है । इस प्रकार के ज्ञानात्मक युगल अन्य वस्तुओं में नहीं पाया जाते, मात्र आत्मा में ही संभव है । इसलिए यह विशेष स्वरूप है । यह भी बताया है कि इस ज्ञान के अनेकांत को नहीं मानने वाला क्या भूल करता है, कैसे नष्ट होता है, कैसे अनेकांतवादी यथार्थ मानकर जीता है । इसे पहले गद्य में दिखाया है (**दूसरा प्रकार**), फिर इसे ही कलशों में बताया है (**तीसरा प्रकार**) । दूसरे और तीसरे प्रकार में वर्ण्य-विषय की समानता है लेकिन प्रस्तुतिकरण (गद्य-पद्य) में अंतर है । इन्हीं दूसरे और तीसरे प्रकार में उन्होंने सत्त्व-असत्त्व धर्म-युगल को और भी खोला है और द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से सत्त्व-असत्त्व कहकर दो धर्मों के आठ बोल और आठ कलश कहे हैं । इस कारण कुल बोल 14 हो जाते हैं जिनसे आत्मा का अनेकांत स्वरूप प्रकाशित होता है ।

सामान्य अनेकांतस्वरूप में इनके द्वारा आचार्यदेव आत्म-वस्तु को इस प्रकार बताते हैं—

धर्म-युगल	अस्तिपक्ष	नास्तिपक्ष
	आत्मा को...	
तत्-अतत्	अंतरंग में चकचकायमान ज्ञानस्वरूप के द्वारा तत्पना है	बाहर प्रकट होते अनंत ज्ञेयत्व को प्राप्त, स्वरूप से भिन्न ऐसे पररूप के द्वारा अतत्पना है ।
एक-अनेक	सहभूत प्रवर्तमान और क्रमशः प्रवर्तमान अनंत चैतन्य अंशों के समुदायरूप अविभाग द्रव्य के द्वारा एकत्व है	अविभाग एक द्रव्य में व्याप्त सहभूत प्रवर्तमान और क्रमशः प्रवर्तमान अनंत चैतन्य-अंशरूप पर्यायों के द्वारा अनेकत्व है ।

सत्-असत्	अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप से होने की शक्तिरूप स्वभाववानपने के द्वारा सत्त्व है	पर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप से न होने की शक्तिरूप स्वभाववानपने के द्वारा असत्त्व है ।
नित्य-अनित्य	अनादि-निधन अविभाग एक वृत्तिरूप से परिणतपने के द्वारा नित्यत्व है	क्रमशः प्रवर्तमान, एक समय की मर्यादावाले अनेक वृत्ति-अंशोंरूप से परिणतपने के द्वारा अनित्यत्व है ।

अर्थात् आत्मा अपने ज्ञानस्वरूप ही है, ज्ञान से प्रकाशित है (*तत्पना*), परन्तु स्व की ज्ञानमयता के अतिरिक्त जो जड़ता है, उस रूप बिलकुल भी नहीं है (*अतत्पना*) अन्यथा आत्मा और पर में भेद का आधार ही क्या रह जाता है ।

आत्मा अपने गुण-पर्यायों के समुदायरूप एक अखंड द्रव्य है जो अविभागी है; गुण, पर्यायों के संज्ञा, लक्षण आदि से भेद कर देने पर भी आत्मा एकत्वरूप है ही (*एकत्व*) । जैसे व्यवहार में शरीर के हाथ-पैर, मस्तक आदि एक-एक भेद कहने पर भी पूरा शरीर एक ही माना जाता है अथवा अग्नि के गर्मी, आकार, रंग आदि अनेक होने पर भी वह अग्नि पूरी एक ही है । इसी प्रकार आत्मा में एकत्व है । एकत्व होने पर भी अपने गुण-पर्यायों की अपेक्षा आत्मा अनेकत्व को प्राप्त है (*अनेकत्व*) । जैसे गुणमयी आत्मा, ज्ञानी आत्मा, सुखी आत्मा, बलशाली आत्मा, सूक्ष्म आत्मा इत्यादि । ये सब एक ही आत्मा के नाम कहे जाते हैं क्योंकि आत्मा में उस प्रकार से विशेषताएं हैं ।

आप शायद ये सोच सकते हैं कि यह सब बताने की आवश्यकता क्या है । यह तो समझ में आ ही जाता है । जैसे आज तक भी अग्नि को लेकर हमें कभी इस प्रकार का एकत्व-अनेकत्व बताया नहीं गया फिर भी हम उसे प्रयोग कर लेते हैं और कभी कोई समस्या नहीं आती । तो फिर आत्मा को इतना कठिन क्यों बनाया जा रहा है । वास्तव में बात सच्ची है कि जगत की वस्तुओं को लेकर हमें कभी परेशानी नहीं होती । लेकिन वे सभी चीजें मूर्तिक हैं, स्थूल हैं, अनेकों बार परिचय में आई हुई हैं । इसलिए उनके बारे में हम अपने इन्द्रिय ज्ञान से सब ठीक-ठीक समझ लेते हैं । परन्तु आत्मा को अभी तक हमने देखा नहीं, अनुभवा नहीं, उसका सही परिचय प्राप्त नहीं किया जिसके कारण ही संसार भ्रमण भी हो ही रहा है । आत्मा आँखों से दिखने वाली या छूकर समझ में आने वाली तो है नहीं कि इन्द्रिय ज्ञान से समझ ली जाए और उसकी सारी विशेषताओं का परिज्ञान हो जाए । आत्मा अज्ञात है और उसके बारे में ये सभी बातें स्पष्ट नहीं है, स्वयं कल्पना करने पर अनेकों भूल भी होती है इसलिये आत्म-तत्त्व के ज्ञाता आचार्य क्रमशः अनेक धर्मों के माध्यम से ऐसी सूक्ष्म आत्मा को बता रहे हैं । ये एकत्व-अनेकत्व आदि धर्म सामान्य होने पर भी व्यक्ति को ग्राह्य नहीं हो पा रहे हैं । ये सब सुनकर भी व्यक्ति कभी आत्मा को 'एक ही हूँ' ऐसा मान लेता है, कभी 'अनेक ही हूँ' ऐसा मान लेता है, कभी भ्रमपूर्ण एक-अनेक मान लेता है । और इसी को लेकर दार्शनिक जगत में इतने मत-मतान्तर उत्पन्न हो गए हैं । इसलिए इन सबको गहराई के साथ आचार्य देव समझा रहे हैं । इनके जाने-माने बिना आत्मा का अनुभव संभव भी नहीं है ।

आत्मा अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप होने की शक्ति रखता है (*सत्त्व*), पर अन्य पदार्थों के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप नहीं हो जाए ऐसी शक्ति भी रखता है (*असत्त्व*)। इससे आत्मा की पूर्ण सुरक्षा होती है ।

आत्मा परिणमता है, परन्तु परिणमन करते हुए अपने स्वभाव को बनाये रखे ऐसी वृत्ति के साथ परिणमता है (*नित्यत्व*) । यह परिणमन प्रत्येक समय प्रकट होता है, फिर अन्य परिणमन होता है ऐसा निरन्तर होता है (*अनित्यत्व*) ।

प्रथम प्रकार में यह आत्म-वस्तु का **सामान्य अनेकांतस्वरूप** आचार्य देव ने दर्शाया ।

चूँकि दूसरे और तीसरे प्रकार में विषय एक ही है इसलिए यहाँ एक बार ही इस विषय को लेंगे जिसमें दोनों विधाओं में कहा हुआ सामान्य और विशेष कथन दर्शा दिया जायेगा । इस विषय के 14 कलशों में अनेकांत के इन 14 भंगों को अलग-अलग समझाया है । प्रत्येक कलश में इन चार बातों का वर्णन है –

1. उस स्वरूप को स्वीकार नहीं करने पर अज्ञानी क्या मानता है?
2. ऐसा मानने का फल क्या होता है – 'अज्ञानी नष्ट होता है' ।
3. ज्ञानी उस स्वरूप को स्वीकार किस प्रकार करता है?
4. ऐसा मानने का फल क्या होता है – 'ज्ञानी जीता है' ।

इन युगलरूप कलशों में प्रथम कलश में 'अस्ति नहीं मानने वाले जीव' का कथन है, दूसरे कलश में 'नास्ति नहीं मानने वाले जीव' का कथन है । जैसे **तत्त्व संबंधी पहला कलश** है, इसमें ज्ञान का तत्पना नहीं जानने-मानने पर किस प्रकार का अज्ञान उत्पन्न होता है वह बताया है । फिर इसी कलश में ज्ञान का तत्पना जानने-मानने पर किस प्रकार ज्ञान सम्यक् रहता है वह बताया है । इसी **युगल के दूसरे कलश** में ज्ञान का अतत्पना नहीं जानने-मानने पर किस प्रकार का अज्ञान पैदा होता है, ज्ञान का अतत्पना जानने-मानने पर कैसे सम्यग्ज्ञान होता है यह बताया है ।

इसी प्रकार सारे कलशों में प्रथम में अस्ति नहीं मानने वाला, दूसरे में नास्ति नहीं मानने वाला ऐसा कथन करके सम्यक् बोध क्या है इसे प्रकाशित किया है । अब संक्षेप में आचार्य देव द्वारा कहे गए इन 14 धर्मों के द्वारा आत्म-स्वरूप को प्रकाशित करते हैं –

1. ज्ञान का तत्पना: अज्ञानी ज्ञान को अपने स्वरूप से नहीं जानता और ज्ञान में पदार्थ तो जाने ही जाते हैं इसलिए अज्ञानी ज्ञेयों को ही अपना स्वरूप जानता है । परन्तु ज्ञानी ज्ञेयों को जानता हुआ भी ज्ञान को अपना स्वरूप स्वीकारता हुआ ज्ञाता ही रहता है, ज्ञेयरूप नहीं बन जाता । अर्थात् **आत्मा स्वरूप से ज्ञानमात्र ही रहता है भले ही वह परद्रव्य को जानता है लेकिन इतने भर के कारण वह ज्ञेयरूप नहीं बन जाता** ।

2. ज्ञान का अतत्पना: अज्ञानी ज्ञान को 'पररूप से मेरे ज्ञान का सत्त्व नहीं है' – ऐसा नहीं जानता हुआ विश्व के सारे पदार्थों को अपना ही स्वरूप/सत्ता मानकर ग्रहण करना चाहता है, स्वच्छंद होता है। परन्तु ज्ञानी 'ज्ञान पररूप से नहीं है' – ऐसा जानता हुआ विश्व को जानता हुआ भी विश्वरूप होने की चेष्टा नहीं करता, मात्र ज्ञानरूप ही रहता है, सारे विश्व के ज्ञान को विश्व ना जानता हुआ उसे ज्ञानरूप ही जानता है । अर्थात् **आत्मा पररूप से नहीं है, अपने अस्तित्व मात्र है । और आत्मा का अस्तित्व विश्वरूप नहीं, अपने ज्ञानमात्ररूप है** ।

3. ज्ञान का एकत्व: ज्ञान चूँकि समस्त ज्ञेय पदार्थों में व्यापार करता है तो अनेक आकाररूप होता है, ऐसा देखता हुआ अज्ञानी ज्ञान का एकत्व नहीं जानता हुआ 'मैं अनेक रूप हो गया हूँ, अनेकों को जानते-जानते मैं खंडित हुआ जा रहा हूँ, थक गया हूँ' – ऐसा मानता हुआ दुखी होता है । परन्तु ज्ञानी ज्ञान के एकत्व जानता हुआ 'अनेकों को जानने पर भी मैं एकरूप ही रहता हूँ, ये अनेकाकार मेरे ज्ञान का ही एकरूप है' – ऐसा जानता हुआ जीता है, नष्ट नहीं होता । अर्थात् **आत्मा अनेकों ज्ञेयों को जानने पर भी अपने ज्ञानभाव से एकरूप ही रहता है, अनेक नहीं बन जाता** ।

4. ज्ञान का अनेकत्व: अज्ञानी ज्ञान का अनेकत्व नहीं जानता हुआ एकमात्र एकत्व की वांछा करता हुआ 'बस, अपने ज्ञान में एक को ही जानूँ, अनेकों को जानना तो मलिनता है, कलंक है' – ऐसा मानता हुआ ज्ञान में से सारे अनेकाकार हुए ज्ञेयाकारों को धो डालना चाहता है । और इसकी असंभवता होने से प्रत्यक्ष ही दुखी होता है । परन्तु ज्ञानी ज्ञान के अनेकत्व को जानता हुआ 'अनेकोंरूप ज्ञान दिखने पर भी ज्ञान वास्तव में एकरूप है, पर्यायों से अनेकरूप होता है वह ज्ञान का स्वच्छता है, मलिनता नहीं' – ऐसा जानता हुआ सुखी होता है । अर्थात् **ज्ञान में अनेकों ज्ञेयों का दर्शित होना कलंक नहीं है, यह तो उसका अनेक-स्वरूप है जो स्वाभाविक है, अनेकाकार ज्ञान होने पर उससे डरने की जरुरत नहीं है** ।

इसके पश्चात् सत्त्व-असत्त्व धर्म के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा से एक-एक कलश हैं याने सब मिलकर 2 x 4 = 8 कलश हैं । इन्हें क्रमश: बताते हैं–

5. ज्ञान का स्व-द्रव्य से सत्त्व: ज्ञान में स्पष्टरूप से सारे पर-द्रव्य दिखाई देते हैं। अज्ञानी स्व-द्रव्यपने से स्वयं को नहीं जानता हुआ, इन दिखाई देने वाले पर-द्रव्यों को ही देखता हुआ उन्हीं को अपना स्व-द्रव्य मानता है । परन्तु ज्ञानी स्व-द्रव्यपने से अपने अस्तित्व को जानता हुआ दिखाई देने वाले परद्रव्यों से ठगाया नहीं जाता । अर्थात् **आत्मा अपने स्व-द्रव्य की अपेक्षा सत् है, आत्मा में पर-द्रव्य दिखाई देने पर भी स्व-अस्तित्व ज्यों का त्यों रहता है** ।

6. ज्ञान का पर-द्रव्य से असत्त्व: अज्ञानी ज्ञान का पर-द्रव्यपने से असत्त्व को नहीं जानता हुआ सारे द्रव्यों में फैलता है, सारे विश्व को स्व-द्रव्य मान बैठता है, स्व-द्रव्य मानता हुआ उनमें ही मग्न रहता है । परन्तु ज्ञानी समस्त बाह्य द्रव्यों में स्व-द्रव्य का नास्तित्व देखता हुआ अपने को ज्ञानमात्र मानता है, ना की दिखाई देने वाले द्रव्य । अर्थात् **आत्मा पर-द्रव्यों की अपेक्षा असत् है, पर-द्रव्य आत्मा नहीं हैं, आत्मा ही आत्मा है** ।

7. ज्ञान का स्व-क्षेत्र से सत्त्व: अज्ञानी स्व-क्षेत्र से ज्ञान का अस्तित्व नहीं जानता हुआ बाहर के क्षेत्र में स्थित ज्ञेयों को जानता हुआ 'संपूर्ण ज्ञान बाहर के क्षेत्र में ही है' – ऐसा मानता है । परन्तु ज्ञानी स्व-क्षेत्र से अपना अस्तित्व जानता हुआ बाहरी ज्ञेयों को जानते हुए भी 'मैं आत्मा में स्थित ज्ञेयों को ही जानता हूँ, स्व-क्षेत्र में ही स्थित हूँ' – ऐसा जानता है । अर्थात् **आत्मा बाहरी क्षेत्रस्थित ज्ञेयों को जानते हुए भी अपने ही क्षेत्र (प्रदेशों, ज्ञान) में स्थित रहता है** ।

8. ज्ञान का पर-क्षेत्र से असत्त्व: अज्ञानी पर-क्षेत्र से ज्ञान का नास्तित्व नहीं जानता हुआ स्व-क्षेत्र से अतिशय प्रेम करता हुआ बाहरी वस्तुओं को देखना ही नहीं चाहता । और यदि कुछ बाह्य-क्षेत्र स्थित वस्तु ज्ञान में दिख जाए तो उससे अपना नाश मानता है, इसलिए वह समस्त ज्ञेयाकारों को छोड़ना चाहता है । लेकिन ज्ञेयाकारों को छोड़ने से ज्ञान ही छूटता है ऐसा नहीं जानता हुआ वह वास्तव में ज्ञान को ही छोड़ देता है । परंतु ज्ञानी पर-क्षेत्र से स्वयं का नास्तित्व जानता हुआ अपने क्षेत्र में रहता हुआ बाहरी पदार्थों के जानने से घबराता नहीं है परन्तु उन ज्ञेयों को ग्रहण नहीं करता । अर्थात् **पर-क्षेत्र में स्थित अर्थों को जानने से आत्मा की चैतन्यता खंडित नहीं होती वरन बनी रहती है** ।

9. ज्ञान का स्व-काल से सत्त्व: अज्ञानी स्व-काल से आत्मा का अस्तित्व नहीं जानता हुआ बाहरी पदार्थों के होने से ही ज्ञान का अस्तित्व मानता है । ऐसा मानता हुआ जब बाह्य पदार्थ हैं, तब अपना अस्तित्व मानता है और बाह्य पदार्थों के नाश से अपना नाश मानता है । परन्तु ज्ञानी स्व-काल से अपना अस्तित्व

जानता हुआ बाह्य पदार्थों के नाश होने पर भी अपना सत्त्व जानता है । अर्थात् **बाह्य पदार्थों के नाश होने से आत्मा नष्ट नहीं होता, अपने स्व-काल से अस्तित्व से बना रहता है** ।

10. ज्ञान का पर-काल से असत्त्व: अज्ञानी पर-काल से नास्तित्व नहीं जानता हुआ बाह्य पदार्थों के आलंबन से ही ज्ञान को मानता है । इसलिए सारे ज्ञेयों में उसका मन घूमता रहता है । परंतु ज्ञानी पर-काल से नास्तित्व को जानता हुआ स्वयं को अपने ही कारण ज्ञानात्मक देखता है, बाह्य पदार्थों के अस्तित्व के कारण नहीं । अर्थात् **आत्मा बाह्य पदार्थों के अस्तित्व से ज्ञानमयी नहीं है** ।

11. ज्ञान का स्व-भाव से सत्त्व: अज्ञानी सदैव पर-भावों के परिणमन को ही जानता हुआ उन्हें ही सर्वस्व मानता है, अपने ज्ञानभाव को नहीं जानता । परन्तु ज्ञानी अपने ज्ञान-भाव के परिणमन को अनुभव करता हुआ अपने को ज्ञान-परिणमनवाला मानता है । अर्थात् **आत्मा स्वयं के ज्ञान के भवनरूप है** ।

12. ज्ञान का पर-भाव से असत्त्व: अज्ञानी समस्त वस्तुओं के भावों में अपनी आत्मा देखता हुआ सभी परभावों में प्रवेश करता चला जाता है । परन्तु ज्ञानी पर-भावों को अपने में नहीं देखता हुआ ज्ञानमात्र स्वयं के स्वभाव को जानता हुआ शुद्ध रहता है । अर्थात् **आत्मा अन्य किसी भी वस्तु के भाव रूप नहीं परिणमता है** ।

इस प्रकार स्व-पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अस्ति-नास्ति की अपेक्षा ज्ञानात्मा का अनेकांतस्वरूप प्रकाशित किया । आपको कहीं-कहीं ऐसा लग सकता है कि यह तो पहले ही बता दिया है । परन्तु आप ध्यान से देखेंगे तो पायेंगे कि ये पुनरुक्त नहीं हैं, बल्कि द्रव्य, क्षेत्र आदि की विवक्षा होने से अलग-अलग हैं । एक ही वस्तु के चार आयाम होते हैं – द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव । जब द्रव्य आयाम की विवक्षा होती है उस समय शेष आयाम गौण होते हैं । उस समय हमें केवल द्रव्य आयाम पर दृष्टि रखनी चाहिए । तब आपको चारों का सूक्ष्म अंतर आसानी से विदित हो जायेगा ।

13. ज्ञान का नित्यत्व: अज्ञानी ज्ञान का नित्य-स्वभाव नहीं जानता हुआ क्षणिक ज्ञान-पर्यायों को देखता हुआ उतना ही अपने को मानता हुआ उस ज्ञान पर्याय के नष्ट होते ही अपने को भी नष्ट अनुभवता है । परन्तु ज्ञानी क्षणिक पर्यायों के होने पर भी सर्व अवस्थाओं में व्याप्त एक चैतन्यता के अनुभव से अपने को नित्य मानता है । अर्थात् **आत्मा अनेकों क्षण-भंगुर ज्ञान-पर्याय के होने पर भी चैतन्यता के द्वारा नित्य है** ।

14. ज्ञान का अनित्यत्व: अज्ञानी एक नित्य आत्मा को ही चाहता हुआ ज्ञान की क्षणिक पर्यायों से भिन्न कोई अवस्तुरूप मात्र नित्य आत्मा चाहता है । परन्तु ज्ञानी अनित्य पर्यायों से नित्य आत्मा अनुभवता हुआ जानता है कि अनित्य पर्यायों में नित्य आत्मा ही व्याप्त है । अर्थात् **आत्मा क्षणिक ज्ञान-पर्यायों की अपेक्षा अनित्य है जो उसका सहज स्वभाव ही है** ।

इस प्रकार चार धर्म-युगलों के 14 भंगों द्वारा आत्म-तत्त्व प्रकाशित हुआ । यह आत्मा का सहज-स्वरूप है । इसे जानने पर सभी अज्ञान समाप्त होते हैं, अपने अनेकांत-स्वरूप की, ज्ञान-स्वभाव की महिमा आती है, सम्यग्ज्ञान होता है, ज्ञान का स्वभाव जानने पर विस्मयपूर्वक आनंद भी आता है । हम आप सभी इस आत्म-तत्त्व को समझकर आह्लादित हों इसी मंगल भावना के साथ विराम लेता हूँ ।

- विकास जैन (छाबड़ा), इंदौर. vikasnd@gmail.com 7000676108

1-7-2020